Quest Journals
Journal of Research in Humanities and Social Science
Volume 11 ~ Issue 3 (2023) pp: 362-368
ISSN(Online):2321-9467
www.questjournals.org

Research Paper

भारतीय संस्कृति का विश्व संस्कृति को प्रदेय : पुरुषार्थ चतुष्टय के विशेष सन्दर्भ में

डॉ. अनीता (एसो० प्रोफेसर)
डी.ई.आई. दयालबाग, आगरा

Received 14 Mar., 2023; Revised 27 Mar., 2023; Accepted 29 Mar., 2023 © The author(s) 2023.
Published with open access at www.questjournals.org

विश्व सभ्यता के पटल पर जितने भी जीव इस जगत् में विद्यमान हैं, उन सबके जीने का कोई न कोई उद्देश्य अवश्य है। उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मानव ने सृष्टि के आरम्भ से ही साधन ढूंढ़े हैं। प्रत्येक समाज इसमें अपने आरम्भिक काल से ही प्रयासरत है। दार्शनिक सम्प्रदायों का विकास भी इसी मार्ग के अन्वेषण का तार्किक प्रयास है। ईसाई धर्मानुसार दया, करूणा एवं क्षमा ही जीवन के मुख्य आधार हैं।

मुस्लिम धर्मानुसार खुदा के आदेश अथवा वाणी को सर्वोपरि मानते हुए मानव को, त त्याग, बलिदान, दान तथा सेवा को अपने जीवन का आधार बनाना चाहिए। श्रमण संस्कृति के अनुसार करूणा, अहिंसा, जीवों पर दया तथा अपरिग्रह को जीवन-नियम बनाते हुए मध्यम मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।

जैन धर्म में इस विषय को बड़े ही सहज ढंग से रखते हुए कहा गया है कि किसी वस्तु को लेकर कोई व्यक्ति उसके विषयमेंजोकररहाहै, अन्य व्यक्ति उसी वस्तु के विषय अन्य ढंग से भी कर सकता है और वे दोनों ही सत्य हो सकते हैं। यही स्याद्वाद जैन दर्शन का एक ऐसा सिद्धान्त है जो सत्य को अनेक दृष्टि-बोध से स्वीकार करता है।

किसी भी परिस्थिति में मध्यममार्ग का अनुमोदन करने वाला बौद्ध धर्म जीवन-यापन के दो छोरों को बीच में लाकर मिला देने के कारण ही संसार में क्रान्तिकारी रूप से आगे बढ़ा। क्योंकि यहाँ अतिवाद के लिए कोई स्थान न था । भारतीय चिन्तन-धरम्परा में सुखी और व्यवस्थित मानव जीवन को सर्वोतम मानते हुए मनुष्य के लिए सुष्ठु सुविचारित एवं परिष्कृत जीवन-पद्धति का निर्धारण किया गया है। यदि किसी भी परिस्थिति में मध्यममार्ग का अनुमोदन करने वाला बौद्ध धर्म जीवन-यापन के दो छोरों को बीच में लाकर मिला देने के कारण ही संसार में क्रान्तिकारी रूप से आगे बढ़ा। क्योंकि यहाँ अतिवाद के लिए कोई स्थान न था ।

भारतीय चिन्तन- परम्परा में सुखी और व्यवस्थित मानव-जीवन को सर्वोतम मानते हुए मनुष्य के लिए सुष्ठु सुविचारित एवं परिष्कृत जीवन-पद्धति का निर्धारण किया गया है। यदि मनोवैज्ञानिक आधार पर इसका अवलोकन किया जाये तो जीवन जीने की इस पद्धति को सार्वभौम आचार संहिता भी कहा जा सकता है क्योंकि इसमें सम्पूर्ण मानव-जीवन को सार्थक, सुगम एवं सोद्देश्य बनाने के लिए चार पुरुषार्थ अर्थात् पुरुषार्थ-चतुष्टय की कल्पना की गई है। भारतीय संस्कृति में निहित धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी चार पुरुषार्थ, ऐसे सुदृढ़ और कल्याणकारी चार स्तम्भ हैं, जिनका आधार व्यवहारिक होते हुए भी वैज्ञानिक व मनोवैज्ञानिक है।

भारतीय मनीषियों ने अनुभव किया कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये सरलतया प्राप्य नहीं है। इनको साधने के लिए पुरुषार्थ की आवश्यकता है। ये जीवनभर चलने वाली सतत् प्रक्रिया है , इसलिए इनकी सिद्धि

सहज रूप में असम्भव हैं और इस कठिनता से प्राप्य जीवन-मार्ग पर चलने को उन्होंने 'पुरुष' का 'अर्थ' सिद्ध कर दिया। अर्थात् 'पुरुषार्थ शब्द में पुरुष' शब्द मानवमात्र का बोध कराता है और 'अर्थ' शब्द प्रयोजन मूलक है। अतः मानव जीवन के प्रयोजनों का ही दूसरा नाम पुरुषार्थ है। दूसरे शब्दों में पुरुषैः अर्थ्यते इति पुरुषार्थः अथवा पुरुषाणाम् अर्थः पुरुषार्थः अर्थात् जो पुरुष के द्वारा चाहा जाये वह अभीष्ट विषय ही पुरुषार्थ है।

पुरुष का अर्थ है - देहधारी मनुष्य और अर्थ शब्द का अभिप्राय है - साध्य, लक्ष्य तथा प्रयोजन से है। पुरुषार्थ मनुष्य के जीवन का वह परम लक्ष्य या प्रयोजन है, जिसकी प्राप्ति के लिए वह सदैव प्रयत्नशील तथा क्रियाशील रहता है। पुरुषार्थ मनुष्य जीवन के लक्ष्यों तथा उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक होता है। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष ये चारों पुरुषार्थ हैं जिनको पुरुषार्थ चतुष्ट्य या चतुर्वर्ग भी कहा गया हैं। भौतिक अर्थात् शारीरिक इन्द्रियों एवं आध्यात्मिक अर्थात् आत्मा या परमात्मा से संबंध रखने के बीच का संतुलित दृष्टिकोण ही पुरुषार्थ का सही स्वरूप है।

मनुष्य जिस किसी भी वस्तु या सुख की कल्पना कर सकता है, वे सभी किसी न किसी नाम रूप से इन्हीं चार पुरुषार्थों में निहित है। जीवन की समग्रता ही समाविष्ट है इस चतुर्वर्ग में संसार में किसी मनुष्य का लक्ष्य धर्म होता है तो किसी का अर्थ किसी का काम होता है तो किसी का मोक्ष। क्योंकि मानवमात्र की प्रवृत्ति सुख के लिए होती है। विषय-सुख तथा आत्मसुख के भेद से सुख को दो प्रकारों में बाँटा जा सकता है। दुःख - मिश्रित सुख ही विषय-सुख है तथा दुःखों से सर्वथा रहित सुख ही आत्मसुख है इसी का अपर नाम आनन्द है।

भारतीय जीवनयापन - नियमावली के मूल में निहित पुरुषार्थ-चतुष्टय में से कोई भी पुरुषार्थ हेय अथवा दूसरे से कमतर नहीं है अपने-अपने स्थान पर चारों ही महत्त्वपूर्ण हैं और चारों ही मिलकर एक सुगठित और समाज कल्याणकारी व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। अगर ऐसा न होता तो कामशास्त्र का आकर-ग्रन्थ लिखने वाले वात्स्यायन भारतीय परम्परा में एक ऋषि के रूप में प्रतिष्ठित न हुए होते।

उन्हें भी दूसरे पुरुषार्थों पर आकर ग्रन्थ लिखने वाले चिन्तकों की श्रेणी में रखा गया है। क्योंकि भारतीय परम्परा में ये चारों ही पुरुषार्थ परस्पर सहयोगी की दृष्टि से व्याख्यायित हैं।

भारतीय संस्कृति में धर्म मात्र, रिलीजन नहीं है, अर्थ इक्नोमिक्स नहीं है, काम मात्र सेक्स नहीं है और मोक्ष केवल स्पिरिचुएलिटी नहीं है।

यदि पृथक-पृथक रूप से पुरुषार्थ-चतुष्टय पर दृष्टि डाली जाये तो इनमें से धर्म पुरुषार्थ वह पुरुषार्थ है जिसके मूल में ही अन्य तीनों पुरुषार्थों की प्रवृत्ति समाहित है। क्योंकि धर्म से रहित अर्थ, काम और मोक्ष की पुरुषार्थता असम्भव है। धर्म प्रवृत्तिमूलक तथा निवृत्तिमूलक के भेद से दो प्रकार का होता है। धर्म जब प्रवृत्तिपरक होता है तो इस से आगे के दो पुरुषार्थ अर्थात- अर्थ और काम अपनी पुरुषार्थता को प्राप्त करते हैं तथा जब यह निवृत्तिपरक होता है तो मोक्ष नामक परमपुरुषार्थ का प्राकट्य होता है, प्रादुर्भाव होता है। अर्थ और काम को विकार से संस्कार व विकृति से संस्कृति की ओर मोड़कर प्रतिष्ठित करने का कार्य धर्म ही करता है।

धर्म पुरुषार्थ - वह नैतिक नियम व आदर्श है जो व्यक्ति को भौतिक सुख तथा सांसारिक भोग-विलास के मध्य में भी जीवन के उच्चतम लक्ष्यों की ओर जागरूक रखता है तथा उसके व्यवहार को नियन्त्रित करते हुए निर्देशित करता है। इस प्रकार धर्म को जीवन का मार्गदर्शक कहा जा सकता है।

धर्मशास्त्रकारों के अनुसार धर्म एक जीवन-शैली है जो मनुष्य को सभी प्रकार के सदाचारों से युक्त होने की प्रेरणा देती है।

धर्म का एक लौकिक पक्ष है और एक पार- लौकिक यस। मान्यता यह है कि समस्त सृष्टि धर्म पर ही आश्रित है और श्रेष्ठतम धर्म है - अज्ञान का निवारण।

धर्म का नाश किया जाए तो वह नष्ट हुआ कर्त्ता को भी नष्ट कर देता है परन्तु रक्षा करने पर रक्षा करता है -

*Corresponding Author: डॉ. अनीता (एसो० प्रोफेसर)

"धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मे न त्यजामि मा नो धर्मो हतोऽवधीत्।।"1

अनृशंसता ही परमधर्म है -

"आनृशंस्यं परो धर्मः परमार्थाच्च मे मतम्।
आन्तशंस्य चिकीर्षामि नकुलो यक्ष जीवतु ।।"2

सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के पीठ पर जो महावाक्य स्वर्णाक्षरों में अंकित है, वह महावाक्य है - धर्मो रक्षति रक्षितः। यही भारतीय न्याय का उद्घोष है और इसी में छिपा हुआ है भारतीय संस्कृति का समस्त रहस्य |

भारतीय मनीषा के लिए धर्म एक अत्यंत जीवंत और रहस्यमय शब्द है । धर्म का समस्त रहस्य उसकी प्रवर्तन शक्ति में छिपा है जो कृत्य , चिंतन , आचार-विचार और प्रवर्तन में सहायक है , वही धर्म है ।

यदि महाभारत के एक श्लोक के माध्यम से धर्म को व्याख्यायित करना हो तो इस प्रकार कर सकते हैं कि व्यक्ति मन को वश में कर के धर्म को अपना ध्येय बनाये तथा सभी प्राणियों के साथ ऐसा व्यवहार कभी न करें जो उसे स्वयं के लिए पसन्द नहीं -

"तस्माद् धर्मप्रधानेन भवितव्यं यतात्मना ।
तथा च सर्वभूतेषु वर्तितव्यं यथात्मनि ।।"3

मनुस्मृति में भी अपने आपको प्रिय लगने वाले व्यवहार, वस्तु व बातों को ही धर्म की संज्ञा दी गई है-

"वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ।।"4

मनुमहाराज ने धर्म के दस लक्षण इस प्रकार से बताए हैं-

"धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिनिद्रयनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधा दशकम् धर्मलक्षणम् ।।"5

इस प्रकार धर्म मानव जीवन का वह प्रत्यय है जो सर्व स्वीकृत तथा व्यक्तिगत आचरण के द्वारा प्रकट होता है। व्यक्तिगत आचरण से प्रकट होने का तात्पर्य है कि धर्म क्रियात्मक है। धर्म को आधार किया जाता है। इससे व्यवहार व्यवहृत होता है।

वैशेषिकों के अनुसार-

" यथोभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः ।"6

अर्थात् जिस से इस जीवन का अभ्युदय और भावी जीवन में मोक्ष की प्राप्ति हो वही धर्म है।

महाभारत में धर्म के दो रूप बताए हैं। एक सीमित रूप है जिसमें कर्मकाण्ड, आचार-विचार तथा अनुष्ठान आदि आते हैं तथा दूसरा उसका बृहत् या सार्वजनीन रूप है, जिस में वे सभी धारणाएँ, आदर्श व प्रत्यय समाहित है, जो समाज को धारण करते हैं। जब धर्म का यह सीमित रूप व्यापक रूप को नियन्त्रित या बाधित करने लगता है तो धर्म, धर्म न रहकर अधर्म हो जाता है।

भीष्म युधिष्ठिर के शब्दों में- कर्मकाण्ड, पूजा, मन्दिर आदि तभी तक धर्म से जुड़े हैं, जब तक ये वृहद् धर्म के अनुकूल हों। यदि इनका व्यवहार बृहद धर्म को बाधित करने लगता है तो ये धर्म के नाम पर दुराचार बन जाते हैं-

"धर्मं यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुधर्म तत्।
अविरोधात्तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रमः ।।"7

धर्म वह है, जो सबको धारण करता है, अधोगति में जाने से बचाता है और जीवन की रक्षा करता है । धर्म ने सारी प्रजा को धारण कर रखा है । अतः जो जीवन को संतुलित रखें व धर्म है यही महाभारत के शांतिपर्व में कहा गया है-

*Corresponding Author: डॉ. अनीता (एसो० प्रोफेसर)

"धारणाद् धर्ममित्याहु धर्मेण विधृताः प्रजाः ।
यः स्याद् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः। ।"8

धर्म के बहुत से द्वार है जिनके द्वारा धर्म अपनी अभिव्यक्ति करता है तथा धर्म की कोई भी क्रिया विफल नहीं होती है । यह द्वार युगदृष्टा मनुष्यों के पुष्ट मत व आचरण मुख ही तो है । तदर्थ ही धर्माचरण सर्वदा तथा सर्वथा श्लाघनीय है।

धर्म मानव जीवन में ऐसा आदर्श प्रस्तुत करता है, जिससे मानव जीवन का कल्याण हो जाता है । धर्म समस्त मानव मूल्यों का मूल आधार एवं स्रोत है। धर्म समाज में शांति व्यवस्था एवं सामंजस्य उत्पन्न करता है । धर्म केवल भाव मात्र नहीं है, वह यथार्थ जीवन में प्रकट होने वाला भी हुआ और विश्वास भी है । धर्म कीवृद्धि होने पर की समस्त प्राणियों का अभ्युदय होता है। और धर्म का ह्रास होने पर सब का ह्रास हो जाता है-

"धर्मे वर्धति वर्धन्ति सर्वभूतानि सर्वदा ।
तस्मिन् ह्रसति हीयन्ते तस्माद्धर्म प्रवर्धयेत ।।"9

अर्थ पुरुषार्थ - योगप्रधान अथवा भोग-प्रधान सभी क्रियाएँ अर्थ से ही सम्पन्न होती हैं। सुखद मानव जीवन की जितनी भी व्यवस्थाएँ हैं, वे सभी इस अर्थ से ही व्यवस्थित होती हैं। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी व संन्यासी की आवश्यकताओं की पूर्ति की योग्यता एक गृहस्थ, इस अर्थ से भी प्राप्त करता है। अर्थ, संसार की सर्वाधिक अभीष्ट वस्तु है क्योंकि धर्म और काम की सिद्धि भी इसी के हाथों से होती है।

अर्थ को पुरुषार्थ का एक प्रमुख अंग माना है और उसका स्थान 'धर्म' के उपरान्त निर्धारित किया है। भारतीय संस्कृति में अर्थ का बहुत महत्व है । वेद में अर्थ को 'वसु' कहकर संबोधित किया गया है। ऋग्वेद में ऋषि ने अनुपक्षितं वसु की कामना की है अर्थात् कभी नष्ट न होने वाला ऐश्वर्य प्रदान करने की कामना की है ।

"नू नो रास्व सहस्रवत् तोकवत् पुष्टिमद् वसु ।
खुमत् अग्ने सुवीर्य्यं वर्षिष्ठं अनुपक्षितम्।।"10

अर्थ के अभाव में जीवन का कोई भी संकल्प पूरा नहीं किया जा सकता और शायद इसी लिए अर्थ को पुरुषार्थों में स्थान मिला है। कहा गया है- सर्वे गुणाः काञ्माश्रयन्ति । इसी प्रकार महाभारत में भीष्म पितामह कहते हैं-

"अर्थस्य पुरुषो दासः ।"11

अर्थ पुरुषार्थ से तात्पर्य मात्र धन या पैसे अथवा सम्पत्ति से नहीं है। यहाँ अर्थ का मतलब है- चाही गई वस्तु अथवा अभिलषित पदार्थ । चाणक्य ने लिखा है- अर्थात् प्रवर्तते लोकः । क्योंकि अर्थ सभी का प्रिय पदार्थ है इसलिए सभी अर्थ को प्राप्त करना चाहते हैं। प्राणियों के सुख व समृद्धि का मूल है अर्थ-

" सुखस्य मूलं धर्मः । धर्मस्य मूलं अर्थः ।"12

दूसरे शब्दों में अर्थ मानवीय व्यवहारों, विचारों, क्रियाओं तथा विभिन्न अनुष्ठानों का वह केन्द्रबिन्दु हैं, जिसके द्वारा मनुष्य के इहलोक और परलोक के प्रयोजन सिद्ध होते हैं।

भारतीय परम्परा में अर्थ का भोग त्यागपूर्वक करने का निर्देश दिया गया है। उपनिषद् में
कहा गया है-

"तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विदधनम् ।"13

अर्थ से केवल द्रव्य अथवा धन का ही बोध नहीं होता । द्रव्य तो अर्थ का एक बहुत छोटा-सा भाग है। अर्थ की परिधि बहुत विशाल है। उसकी परिधि में तो सभी पदार्थ आ जाते हैं। भारतीय मनीषा ने अर्थ को संकीर्णता प्रदान नहीं की, बल्कि उसे चेतना के पोषण से जोड़कर अतिमहत्त्वपूर्णबनाया ।

काम पुरुषार्थ - पुरुषार्थ चतुष्टय में काम का भी वही स्थान है जो धर्म अथवा अर्थ का है। संस्कृत के मूर्धन्य विद्वान् डॉ. राधा वल्लभ त्रिपाठी जी के अनुसार 'वात्स्यायन का काम से आशय जीवन को सर्वांगीण रूप से सुन्दर बनाने वाले सारे तत्त्वों के समन्वय से है।" वे आगे लिखते हैं- संकल्पमूलः कामो वै काम का मूल अर्थ

*Corresponding Author: डॉ. अनीता (एसो० प्रोफेसर)

संकल्प हैं अपने बृहद अर्थ में संकल्प जीवन को परिपूर्ण बनाने के लिए है। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त तथा बृहदाख्यकोव में काम इसी बृहत्तर अर्थ में सृष्टि के मूल तत्त्व के रूप में प्रतिपादित है। ललित विस्तर में काम को धर्म का पुत्र कहा गया है। पुराणों में उसे ब्रह्मा का पुत्र बताया गया है। काम जीवन का उत्सव है और योन संसर्ग उसका एक पक्ष है। व्यापक अर्थ में काम जीवन की समग्रता का अंगीकार है। वात्स्यायन ने काम के व्यापक अर्थ को पहले स्वीकार किया है, सीमित को बाद में उन्होंने कहा है- संसार के सभी विषयों में आत्मा से संयुक्त मन से अधिष्ठित इन्द्रियों की अनुकूल प्रवृत्ति ही काम है। इस प्रकार जीवन का हर व्यापार काम से प्रेरित व परिचालित हैं साहित्य, कला और संस्कृति की सभी प्रवृत्तियों और विकास का भी वही जनक है।

"बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्णितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥"14

राग से शून्य कामना ही बलवानों की जो वास्तविक शक्ति है वह मैं ही हूँ। मैं वह कामना हूँ , जो धर्म के विरुद्ध नहीं है।

परन्तु विषयभोग का दास तल स्वीकार कर लेने वाला 'काम' तो विनाश का कारक है अतः वह व्याक्य है -

"ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपखायते ।
संगात्संजायते कामः कामात्कोधोऽभिजायते ।।"15

काम भारतीय संस्कृति की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण ऐषणा है और भारतीय मनीषा के अनुसार, 'काम' स्वयं ब्रह्म की एक विभूति है। अव्यक्त परमब्रह्म ने जब अपने को व्यक्त करने का निर्णय लिया तो सबसे पहले उसने 'काम' का सृजन किया। लौकिक जीवन में जिस प्रकार से धर्म और अर्थ दोनों पुरुषार्थ के साधन होने से परमोपादेय हैं, इसी प्रकार 'काम' भी लोकयात्रा में उपयोगी है।

मोक्ष पुरुषार्थ - मानव जीवन की सार्थकता जिस गन्तव्य स्थान पर पहुँच कर चिर शान्ति को प्राप्त करता है, वही मोक्ष है । मोक्ष भारतीय धर्म का आधारभूत एवं सर्वमान्य प्रत्यय है मोक्ष का चिन्तन भारतीय संस्कृति के समस्त शास्त्रों के मूल में रहा है।

पुरुषार्थ-चतुष्टय की अवधारणा में मोक्ष को साध्य अथवा परमपुरुषार्थ मानकर अन्य तीन पुरुषार्थों को इस साध्य की प्राप्ति हेतु साधन रूप में प्रस्तुत किया गया है। यही कारण है कि धर्म, अर्थ और काम के लिए त्रिवर्ग या त्रिसाधन शब्द का प्रयोग किया जाता है किंतु इससे यह तात्पर्य बिल्कुल नहीं है कि मोक्ष नामक पुरुषार्थ अन्यों की अपेक्षा अधिक अभीष्ट या श्रेष्ठ है। चारों ही पुरुषार्थ वागर्थाविव सम्प्रक्तौ की भाँति एक-दूसरे से संशिलिष्ट है तथा आपस में एक दूसरे के उपस्कारक व सहयोगी हैं।

मोक्ष का शाब्दिक अर्थ देखें तो यह संस्कृत की 'मुच्लृ मोक्षणे' धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है- छुटकारा पाना अर्थात् संसार में विद्यमान प्रत्येक उस वस्तु से मनुष्य को छुटकारा पाने का प्रयत्न करना चाहिए जो उसे बाँधती है। यह बन्धन शारीरिक, मानसिक या फिर आत्मिक किसी भी प्रकार का हो सकता है। वेद से लेकर वर्तमान तक इस विषय पर अनेकानेक ग्रन्थों का प्रणयन हुआ है। ये सभी शास्त्र एकमत होकर व्यक्ति को सांसारिक बन्धनों से मुक्त करने तथा परमसुख या परम आनन्द में लीन होने की बात करते हैं।

शास्त्रों ने मोक्ष के दो स्तर बताए हैं- प्रथम सदेह अर्थात् शरीर के रहते हुए तथा दूसरा विदेह अर्थात् शरीरपात के पश्चात् इन दोनों के अपरनाम जीवन्मुक्ति व विदेहमुक्ति भी हैं। जीवन पुरुषार्थों में मोक्ष अन्तिम है। इस से पूर्व के तीनों पुरुषार्थ इसी के लिए भूमि तैयार करने का कार्य करते हैं तथा इस साध्य रूप पुरुषार्थ के लिए साधन का कार्य है ।

सांख्य दर्शन में कहा गया है कि पुरुष यदि प्रकृति के प्रति सचेत रहकर स्वयं के उद्देश्य के प्रति शुद्ध और साम्य बना रहे तो वह कैवल्य अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लेता है- सत्त्वः पुरुषयोः शुद्धि साम्ये कैवल्यम् और इस शुद्धि और सामयता को प्रस्त करने के लिए आचरण व चिन्तन के स्तर पर जो कुछ किया जाता है, वही पुरुषार्थ है।

*Corresponding Author: डॉ. अनीता (एसो० प्रोफेसर)

मोक्ष की अवधारणा हमारे वेद, दर्शन, ऐतिहासिक ग्रन्थ साहित्य, आदि सभी विधाओं में प्राप्त होती है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में भी मानव को संसाररूपी भवसागर से पार कराने के लिए अर्थात् मोक्ष प्राप्ति हेतु ईश्वर से प्रार्थना की गई है।

विष्णुपुराण में कहा गया है कि-

"इति संसार- दुःखार्क-ताप-तापित - चेतसाम् ।
विमुक्ति - पादपच्छायामृते कुत्र सुखं नृणाम् ।।"16

अर्थात् सांसारिक दुःखरूपी प्रचण्ड सूर्य के ताप से जिनका अन्तःकरण सन्तप्त हो रहा है, उन पुरूषों को मोक्षरूपी कल्पवृक्ष की शीतल छाया को छोड़कर और कहाँ सुख मिल सकता है ? इस प्रकार मोक्ष ही समस्त पुरुषार्थों और समस्त सुखों का सम्राट है।

शान्तिपर्व के अनुसार आत्मज्ञान ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा जीव जन्म-मरण रूपी दुर्गम संसार सागर से पार हो जाता है।

"ज्ञानान्मोक्षो जायते।"17

इसीलिए मोक्ष प्राप्ति हेतु ज्ञान का सबसे अधिक महत्त्व बताया गया है।

श्वेतश्वतरोपनिषद् में भी ब्रह्मज्ञान को मोक्ष प्राप्ति का साधन बताते हुए कहा गया है-

"सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य सृष्टामनेकरूपम् ।
विश्वस्यैक परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति ।।"18

अर्थात् सूक्ष्म से भी सूक्ष्म अविद्या और उसके कार्यरूप दुर्गम स्थान में स्थित जगत के रचयिता, अनेक रूप और संसार को एकमात्र भोग प्रदान करने वाले शिव को जानकर जीव परमशान्ति अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि चारों पुरुषार्थ परस्पर संशिलिष्ट हैं, क्योंकि धर्म व अर्थ के बिना काम नहीं हो सकता और धर्म, अर्थ व काम, इन तीनों की सम्यक् प्राप्ति के बिना मोक्ष नहीं हो सकता । अतः मनुष्य की सभी कामनाओं की पूर्ति हेतु चारों ही पुरुषार्थ अत्यन्त आवश्यक हैं- क्योंकि- धर्मार्थकामाः समवेत सेव्याः, यो ह्येकसक्तः स जनो जघन्यः । अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का सेवन या पालन समान रूप से करना चाहिए। इनमें से किसी एक का ही पालन करने वाला व्यक्ति अपराधी है।

अतः मनुष्य को चाहिए कि वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को जीवन का परम उद्देश्य मानकर आचरण करे वह धर्मपूर्वक अर्थ का उपार्जन करे, धार्मिक कामनाओं से प्रेरित होकर, अंत में जीते जी सभी बन्धनों से मुक्ति प्राप्त कर लें। जैसा कि गीता में कहा गया हैं-

"युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ।।"19

कर्मयोगी कर्म के फल का त्याग कर के भगवत्प्राप्ति रूप शान्ति को प्राप्त होता है और सकाम पुरुष कामना की प्रेरणा से फल में आसक्त होकर बँधता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ -

1. महाभारत वन पर्व - 128
2. महाभारत वन पर्व - 129
3. महाभारत शान्ति पर्व - 167/9
4. मनुस्मृति - 2/6/12
5. मनुस्मृति - 6/92
6. वैशेषिक दर्शन -1/2
7. महाभारत वन पर्व - 131/11

*Corresponding Author: डॉ. अनीता (एसो० प्रोफेसर)

8. महाभारत शान्ति पर्व - 109/11
9. महाभारत - 12/90/17
10.ऋग्वेद - 3/13-7
11.महाभारत - 6/41/36
12. कौटिल्य अर्थशास्त्र - 1/2
13. ईशावास्योपनिषद् - 8/1
14.भगवद्गीता - 7/11
15. भगवद्गीता - 2/62
16. विष्णु पुराण - 6/5/57
17. महाभारत शान्ति पर्व - 318/87
18. श्वेतश्वतरोपनिषद् - 4/14
19. भगवद्गीता - 5/12

*Corresponding Author: डॉ. अनीता (एसो० प्रोफेसर)